सिमरन

भाग - १५

अकाल पुरुष ईश्वर ने आदिकाल से ही मनुष्य को 'आत्म-जीवन-दिशा' दिखाने के लिए गुरू, अवतार, पीर, पैगम्बर संसार में भेजे। उनके पश्चात् कुछ समय बाद धीरे-धीरे उनके द्वारा दिये गए दैवीय उपदेशों में मिलावट तथा परिवर्तन होते गए। इस प्रकार उनके चलाए हुए **धर्मों** में से 'आत्म - रौं', 'आत्म-कला' अथवा 'नाम' आलोप होता गया तथा **बाहरमुखी धार्मिक कर्म कांडो** के **'छिलके'** ही रह गए ओर वास्तविकता खो गई। इस प्रकार परमार्थ थोथा, रसहीन, **'औपचारिक' साधन** बन कर ही रह गया है।

'सन्यासी' तथा **'योगी'** संसार को त्याग कर, पहाड़ों की कंदराओं में समाधि लगाकर, अपने-अपने कल्याण या मुक्ति के लिए कई प्रकार की **'योग साधना'** में लगे रहे। गोरखनाथ तथा मछंदरनाथ जैसे चोटी के योगीयों को सही आत्मिक मार्गदर्शन देने के लिए 'गुरू नानक साहिब' खुद उनके पास गए। उनके साथ जो विचार गोष्ठि हुई, उसका वर्णन भाई गुरदास जी ने अपनी रचना में यूँ किया है —

बाबा बोले नाथ जी ! सबदु सुनहु सचु मुखहु अलाई।

बाझो सचे नाम दे होरु करामाति असां ते नाही।.....

सति नामु बिनु बादरि छाई। (वा.भा.गु. १/४३)

'गृहस्थी' मेहनत से अपना परिवार पालते थे तथा इन योगियों और धर्म-प्रचारकों को भी पुण्य-दान करते थे।

धीरे-धीरे माया के भ्रम के प्रभाव में धार्मिक मुखियों के जीवन में से आत्म-कण, आत्म- रस अथवा **'नाम' का प्रकाश** आलोप होता गया, जिस कारण इनका प्रचार भी थोथा, बाहरमुखी तथा धार्मिक कर्म-कांड तक ही **सीमित** हो गया।

जब हमारे धार्मिक मुखिया ही 'माया' में गलतान हो गए तथा **आत्मिक-जीवन दिशा को भूल गए** तो साधारण जनता का क्या हाल?

माइआ ऐसी मोहनी भाई ।।
जेते जीअ तेते डहकाई ।। (पृ. ११६०)

मोहनी मोहि लीए त्रै गुनीआ ।।
लोभि विआपी झूठी दुनीआ ।। (पृ. १००४)

मनुष्य की ऐसी अधोगति में 'धन गुरू-नानक' पातशाह ने अवतार धारण किया तथा **इलाही वाणी** द्वारा जगत को पुनः सही **आत्म दिशा प्रदान की ।**

आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व की जगत ग्लानि को गुरू साहिब ने अपनी बाणी में यूँ दर्शाया है : —

सरमु धरमु दुइ छपि खलोए
कूडु. फिरै परधानु वे लालो ।। (पृ. ७२२)

संगि न चालहि तिन सिउ हीत ।।
जो बैराई सेई मीत ।।
ऐसे भरमि भुले संसारा ।।
जनमु पदारथु खोइ गवारा ।। (पृ. ६७६)

दसवें पातशाह ने भी दस सवैयों में हमारी धार्मिक ग्लानि का यूँ वर्णन किया है —

कोऊ बुतान को पूजत है पसु कोऊ म्रितान को पूजन धाइओ ।।

कूर क्रिआ उरझियो सभही जग स्री भगवान को भेदु न पाइओ ।।

(त्व प्रसाद स्वयै-पा. १०)

सन्यासियों तथा योगियों को भी सतगुरों ने त्रिगुणी कर्म-कांडों से ऊपर उठने के लिए आत्मिक उपदेश दिये —

जोगु न खिंथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चड़ाईऐ ।।
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ जोगु न सिंङी वाईऐ ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ।। (पृ. ७३०)

रे मन इह बिधि जोगु कमाओ ।।
सिंङी साच अकपट कंठला धिआन बिभूत चड़ाओ ।।

(रामकली पा. १०)

गुरसिख जोगी जागदे माइआ अन्दरि करनि उदासी ।
कंनीं मुंदरां **मंत्र गुर संतां धूड़ि** बिभूत सु लासी ।
खिंथा खिमा हंडावणी प्रेम पत्रु भाउ भुगति बिलासी ।
सबद सुरति सिंङी वजै डंडा गिआनु धिआनु गुर दासी ।

(वा. भा. गु. . २९/१५)

जोगु न भगवी कपड़ी जोगु न मैले वेसि ।।
नानक घरि बैठिआ जोगु पाईऐ सतिगुर कै उपदेसि ।।

(पृ. १४२१)

ऊपरलिखित गुरु उपदेशों में योगियों को **साफ शब्दों** में बताया गया है कि **गृहस्थ में रहते भी, 'साध-संगत' में सिमरन करते हुए गुरू की कृपा द्वारा योग कमाया जा सकता है — यदि हमें सही आत्मिक जीवन का ज्ञान हो जाए तो ।**

हमारे धर्म प्रचारक और तथा कथित धार्मिक मुखियों को भी गुरबाणी में यूं ताड़ना दी गई है —

उपदेसु करै आपि न कमावै ततु सबदु न पछानै ।। (पृ. ३८०)

कबीर अवरह कउ उपदेसते मुख मै परि है रेतु ।।
रासि बिरानी राखते खाया घर का खेतु ।। (पृ. १३६९)

आपि न बूझै लोक बुझाए पांडे खरा सिआणा ।। (पृ १२९०)

इस प्रकार बाहरी और दिखावटी कर्मकांड या हठ योग के साधनों से हटकर गुरू साहिब ने गृहस्थियों के लिए परमार्थ का मार्ग बहुत सरल कर दिया है —

जतु संजम तीरथ ओना जुगा का धरमु है
कलि महि कीरति हरि नामा ।। (पृ. ७९७)

सरब धरम महि स्रेसट धरमु ।।
हरि को नामु जपि निरमल करमु ।। (पृ. २६६)

रे मन ओट लेहु हरि नामा ।।
जा कै सिमरनि दुरमति नासै पावहि पदु निरबाना ।।
(पृ. ९०१)

हरि हरि नामु जपहु मन मेरे
जितु सिमरत सभि किलविख पाप लहाती ।। (पृ. ८८)

किरति विरति करि धरम दी हथहु दे कै भला मनावै ।
(वा.भा.गु. ६/१२)

नामा कहै तिलोचना मुख ते रामु संम्हालि ।।
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि ।।
(पृ १३७५ – ७६)

दसवें पातशाह ने अलग-अलग वर्णों के जिज्ञासुओं को खंडे बाटे का अमृतपान करवाकर उन्हें **'खालसा पंथ'** के **'एक वर्ण'** में बदल दिया ।

जिज्ञासुओं के अनेक वर्ण, धर्म, समुदाय, और वेशधारियों के लिए परमार्थ का संक्षिप्त, सरल तथा **'सर्व सांझा'** उपदेश 'गुरबाणी' के द्वारा प्रदान किया ।

यह उपदेश क्या है?

1) 'करि साध संगति'

2) 'सिमरु माधो'

गुरबाणी के यह उपदेश प्रत्येक वर्ण या वेष के जिज्ञासुओं अथवा —

1) योगी-सन्यासियों

2) प्रचारकों

3) ग्रहस्थियों

आदि के लिए सांझे हैं।

मिलु साधसंगति **भजु केवल नाम ।।** (पृ. १२)

करि साधसंगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ।।

(पृ. ६३१)

हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा ।।

(पृ. ६४२)

अंम्रितु हरि का नामु साधसंगि रावीऐ जीउ ।। (पृ. ६९१)

प्रभ का सिमरनु साध कै संगि ।।

सरब निधान नानक हरि रंगि ।। (पृ. २६२)

जब हम सब का **साँझा** —

परमेश्वर एक है ।

गुरू एक है ।

बाणी एक है ।

परमार्थ एक है ।

उपासना एक है ।

वर्ण एक है ।

जीवन दिशा एक है ।

जीवन मंज़िल एक है ।

तो यह —

पक्षपात

वाद-विवाद

ईर्ष्या-द्वेष

नफरत जलन

वैर विरोध

लड़ाईयां झगड़े

लूट-मार

अत्याचार

मरना मारना

क्यों ?

इसका कारण यह है कि **चाहे** हम **गुरबाणी** को अपना 'इष्ट' या **मार्ग दर्शक** मानते हैं परन्तु हमारा **'व्यवहारिक जीवन'** पूर्णतया बाहरमुखी है जो **'गुरबाणी'** के उपदेशों के **ठीक विपरीत है** ।

रहत अवर कछु अवर कमावत ।।

मनि नही प्रीति मुखहु गंढ लावत ।। (पृ. २६९)

यदि कोई जिज्ञासु परमार्थ की तरफ रुख करता भी है तो ओपचारिक सा दिखावा ही होता है तथा **सही 'आत्मिक मार्गदर्शन'** न मिलने के कारण बाहरमुखी कर्म कांडों में ही फंसा रहता है तथा अपना अमुल्य जीवन व्यर्थ गंवा लेता है ।

चाहे गुरबाणी में स्पष्ट रूप में 'अंतरमुखी' जीवन के अनेक उपदेश दिये गये हैं, परन्तु हम इस 'अन्तरमुखी' **सिमरन-जीवन की ओर ध्यान ही नहीं देते तथा न ही इसकी** आवश्यकता अनुभव करते हैं !

यह अंतरमुखी **'सिमरन जीवन'** कठिन जरूर है, पर गुरमति अनुसार यह —

परमार्थ का **'तत्व सार'** है ।
उल्टी **'खेल प्रिम की'** है ।
गुरमति **'गाडी राह'** है ।

गुरबाणी का अत्यन्त पाठ, कीर्तन, कथा वार्ता करते-सुनते हुए भी हम इस 'तत्व सार' —

अनुभवी 'तत्व शब्द'
अंतरमुखी सूक्ष्म 'सुरति'
तथा
शब्द सुरति के मिलाप

को **समझने, बूझने, पहचानने, अनुभव** करने से **असमर्थ हैं।**

'मायिकी जीवन' के विपरीत 'आत्मिक जीवन' की 'शब्द-सुरति' की उल्टी 'प्रिम खेल' को कोई विरला ही **अनुभव करता, व्यवहार में लाता** तथा **आनंद लेता है।**

ते विरले सैंसार विचि सबद सुरति होइ मिरग मरदै ।

(वा.भा.गु. २८/१७)

राग नाद सभ को सुणै सबद सुरति समझै विरलोई ।

(वा.भा.गु. १५/१६)

ऐसे 'शब्द सुरति' वाले गुरमुख-जन इस **'मायकी'** अग्नि-शोक-सागर में रहते हुए भी **कमल के फूल की भांति निर्लिप्त रहते हैं।**

वास्तव में सृष्टी के दो विलक्षण मंडल हैं —

1) अहम्ग्रस्त मायकी-मंडल
2) 'शब्द' या 'नाम' का आत्म-मंडल

मायकी मंडल से आत्म मंडल की ओर जाने का **एकमात्र साधन**

'सुरति' के द्वारा **'गुर-शब्द'** का अभ्यास अथवा **'सिमरन'** ही है ।

सबदै ही नाउ ऊपजै सबदे मेलि मिलाइआ ।। (पृ. ६४४)

एनी अखी नदरि न आवई
जिचरु सबदि न करे बीचारु ।। (पृ १२७९)

साहिबु मेरा सदा है **दिसै सबदु** कमाइ ।। (पृ. ५०९)

सबदि रते तिना सोझी पई दूजै भरमि भुलाइ ।। (पृ. ५८७)

सबद सुरति लिवलीणु होइ निरंकार सच खंडि निवासी ।
(वा.भा.गु. २५/१८)

'शब्द' के विषय में आम जिज्ञासुओं में कई भ्रांतियां फैली हुई हैं। (इन भ्रांतियों को दूर करने के लिए 'शब्द' शीर्षक के अर्न्तगत गुरबाणी विचार के नौ लेख (58-66) लिखे जा चुके हैं। जिन्हें पढ़ने की प्रेरणा की जाती है)।

संक्षेप में इस विचार को यूं दर्शाया जाता है —

शब्द के दो स्वरूप हैं —

1) शाब्दिक स्वरूप — जो लिखने बोलने में आता है जैसे 'गुरबाणी', भक्तबाणी आदि ।

2) अक्षरहीन शब्द (wordless word) अथवा 'नाम' जो केवल 'अनुभव' द्वारा ही **बूझा-समझा-पहचाना जा सकता है।**

हमारी 'अल्प बुद्धि' इस **अनुभवी 'सूक्ष्म शब्द'** को पकड़ नहीं सकती। हाँ शब्द के **'शाब्दिक-स्वरूप'** या गुरबाणी को बुद्धि से —

पढ़ा,

लिखा,

गाया,

समझा,

विचारा

जा सकता है।

अक्षर-हीन **'तत्त्व शब्द'** को केवल **'अंतरमुखी' अनुभव द्वारा ही —**

बूझा

पहचाना

सुना

विचारा

कमाया

अनुभव किया

जा सकता है।

अन्तरात्मिक-'अनुभव' द्वारा ही **'शब्द-सुरति'** का मिलाप हो सकता है। यहाँ हमारी तीक्ष्ण-बुद्धि की उक्तियों-युक्तियों या दार्शनिकता की **पहुंच नहीं।**

प्राचीनकाल में पंडित लोग 'काशी' जाकर वेद-शास्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त कर धर्म की गहन दार्शनिकता सीखते थे। दिमागी युक्तियों के द्वारा **तीक्ष्ण बुद्धि के सींग अड़ाने** (वाद विवाद करने) का इनका **शुगल बना हुआ था।** जिससे इनका अहम् ओर तगड़ा होता था।

परन्तु गुरबाणी में इस विषस के सम्बन्ध में यूं बयान किया गया है —

पाठ पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे ।।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे ।।

पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका ।।१।।
हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका ।।

(पृ. ६४१)

पड़े सुने किआ होई ।। जउ सहज न मिलिओ सोई ।।

(पृ. ६५५)

बेद पड़हि **हरि नामु न बूझहि** ।।
माइआ कारणि पड़ि पड़ि **लूझहि** ।।
अंतरि मैलु अगिआनी अंधा किउ करि दुतरु तरीजै हे ।।

(पृ १०५०)

चाहे ऊपर लिखित बाणी की पंक्तियां **'पंडितों'** को सम्बोधित की गई हैं, परन्तु यह उपदेश सभी धार्मिक श्रेणियों पर लागू होते हैं।

बिजली के **'करंट'** का दिमागी या किताबी ज्ञान अलग बात है पर इसका करंट लगना, **'छू जाना' झटके का निजी अनुभव होना बिल्कुल अलग तथा 'विलक्षण' है।**

इसी प्रकार 'परमार्थ' के विषय में दिमागी ज्ञान घोटना अलग बात है परन्तु अन्तरात्मा में —

आत्म रौं
आत्मिक रुनझुन
अनहद धुन
आत्म रंग
आत्म रस
प्रेम स्वैपना
नाम

का निजी अनुभव करना अलौकिक प्रेमाभक्ति की खेल है। जो किसी विरले जिज्ञासु को **गुरु कृपा** द्धारा **साध संगत** में सिमरन करते हुए प्राप्त होती है।

करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली ।।
जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली ।। (पृ. ७९४)

अकथ कहाणी पदु निरबाणी को **विरला गुरमुखि बूझए** ।।
(पृ. ८४४)

गुरमुखि विरला कोई बूझै सबदे रहिआ समाई ।। (पृ. १३३२)

बाहरमुखी दिमागी ज्ञान का श्रोताओं पर नाममात्र असर होता है वह भी जल्दी ही उड़ जाता है क्योंकि ऐसे खोखले दिमागी ज्ञान के पीछे **'आत्म जीवन'** की **'आत्म कला'** नहीं होती। इसका ठोस सबूत है कि पुरातन समय की अपेक्षा आजकल कई गुना अधिक धर्म प्रचार होने पर भी हमारा मानसिक तथा धार्मिक जीवन गिरता जा रहा है ।

केवल मात्र दिमागी ज्ञान 'घोटने' से जिज्ञासुओं के जीवन में **परिवर्तन नहीं आ सकता** —

खांड खांड कहै जिहबा न स्वाद मीठो आवै ।
अगनि अगनि कहै सीत न बिनास है ।
बैद बैद कहै रोग मिटत न काहूं को ।
द्रब द्रब कहै काऊ द्रबहि न बिलास है ।
चंदन चंदन कहै प्रगटे न सुभास बासु ।
चंद चंद कहे उजिआरो न प्रगास है ।
तैसे गयान गोसटि करत न रहत पावै ।
करनी प्रधान भान ऊदति अकास है ।

(कबित भा. गु. जी)

दूसरी ओर 'नाम सिमरन' तथा गुरु कृपा द्वारा प्राप्त **'आत्म कला'** से गुरमुखों के जीवन, विचार, वचन तथा कर्मों द्वारा —

जीवन-कण

आत्म-कला

आत्म-ज्ञान

आत्म-प्रकाश

आत्म-रस

आत्म-रंग

'नाम' की रौं

प्रज्जवलित होती है। जो जीव के माया ग्रस्त स्थूल मन को **चीर कर उसकी आत्मा की तारों को छू जाती है** । इस प्रकार आत्मिक 'जीवन छोह' के कारण जिज्ञासु का **माया ग्रस्त** मन तुरन्त बदल कर **आत्म-परायण** हो जाता है।

तभी गुरबाणी हमें बार बार साध संगत में **'सिमरन'** करने की प्रेरणा देती है —

मनि तनि प्रभु आराधीऐ मिलि साध समागै ।। (पृ. ८१७)

प्रभ का सिमरनु साध कै संगि ।।
सरब निधान नानक हरि रंगि ।। (पृ. २६२)

सतसंगति लगि हरि धिआईऐ
हरि हरि चलै तेरै नालि ।। (पृ. २३४)

फूल अपनी सुगन्ध का विज्ञापन या प्रचार **बिना बोले** ही करता है। इसी प्रकार गुरमुख-जनों के **दैवीय जीवन द्वारा** आत्म-रस, रंग, **प्रेम-स्वैपना का प्रचार सहज स्वाभाविक चुपचाप ही होता रहता है।**

गुरमुखि कोटि उधारदा भाई दे नावै एक कणी ।। (पृ. ६०८)

साध कै संगि नही कछु घाल ।।
दरसनु भेटत होत निहाल ।। (पृ. २७२)

ऐसे 'गुरमुख-जन' **'आपि जपै अवरह नामु जपावै'** के हुक्म को सहज ही, अनजाने ही कमा रहे होते हैं।

नेत्रहीनों का **'हाथी'** की शक्ल-सुरत के विषय मे **'अनुभव'** उनके निजी स्पर्श से प्राप्त हुए ज्ञान पर आधारित है । ऐसा ज्ञान अधूरा, अपूर्ण तथा गल्त हो सकता है।

इसी प्रकार **'अनुभवी ज्ञान'** के बिना **'आत्म-मंडल'** के विषय में हमारी जानकारी, विचार, ख्याल तथा ज्ञान —

अधूरा

अपूर्ण

भ्रांति पूर्ण

या गलत

हो सकता है जो कई प्रकार के —

वाद-विवाद

भ्रांतियों

पक्षपात

कट्टरता

लड़ाई

झगड़ें

आदि का कारण बनता है।

दुख की बात है कि जिस धर्म ने हमें —

मेल मिलाप

सेवा भावना

कुर्बानी

प्यार करना

सिखाना था, वही धर्म **हमारी अज्ञानता तथा अहम् के कारण आपस**

में –

वैर विरोध

ईर्ष्या द्वेष

घृणा

जलन

नफरत

लड़ाईयां

जुल्म

का कारण बन रहा है।

इसका मूल कारण यह है कि हमारा 'धर्म-प्रचार' फोकट, अधूरा तथा **रसहीन** हो रहा है।

आपि न बूझै लोक बुझावै ।।
मन का अंधा अंधु कमावै ।।
दरु घरु महलु ठउरु कैसे पावै ।। (पृ. ८३२)

दूसरे शब्दों में, हमारे धर्म में से –

आत्म जीवण-कण

सिमरन अभ्यास

श्रद्धा-भावना

प्रेमा भक्ति

प्रिम रस

प्रिम रंग

नाम की रौं

आलोप हो रही है।

हम बाहरमुखी कर्म कांडों को धार्मिक शिखर, पूर्णता अथवा 'मंजिल' समझकर गुरबाणी का अन्तरमुखी —

गुप्त भाव
आत्म जीवन
शब्द अभ्यास
'नाम सिमरन'
प्रेम स्वैपना

से **अनजान, बेध्यान** तथा **बेपरवाह** होकर मूल आत्मिक-मार्ग दर्शन अर्थात —

साध संगत
तथा
'सिमरन'

से दूर जा रहे हैं।

पड़ीऐ गुनीऐ किआ कथीऐ जा मुंढहु घुथा जाइ ।। (पृ. ६८)

संसार में तीन प्रकार के ज्ञान प्रचलित हैं —

1) मायकी ज्ञान
2) धार्मिक ज्ञान
3) अनुभवी 'तत्त्व ज्ञान'

सारा संसार **'मायकी ज्ञान'** मे ही उलझा हुआ है।

धार्मिक ज्ञान ने जिज्ञासुओं को **'अनुभवी तत्त्व ज्ञान'** की ओर प्रेरित करना था तथा सही परमार्थ का ज्ञान देना था। परन्तु इसके ठीक **विपरीत** धार्मिक ज्ञान भी **'मायकी ज्ञान'** के **परायण** हो गया । जिस कारण **'बाहरमुखी धार्मिक ज्ञान'** —

1. **केवल माया बटोरने का साधन बन गया है।**
2. भद्र पुरुष बनकर अहम् को अधिक सुदृढ़ किया जाता है।
3. **धार्मिक-कट्टरता बढ़ने के कारण वाद-विवाद तथा ईर्ष्या द्वेष का कारण बनता है।**

जिस प्रकार कालेज में पढ़ने के लिए मैट्रिक (matriculation) पास करना अनिवार्य है, इसी प्रकार **'अनुभवी तत्त्व ज्ञान'** की प्राप्ति के लिए पहले धार्मिक ज्ञान होना अनिवार्य है।

परन्तु हम 'धार्मिक ज्ञान' को ही पूर्णता, शिखर अथवा **'मंजिल' समझ लेते हैं** तथा इसी में मस्त या गलतान रहते हैं।

त्रै गुण पड़हि हरि एकु न जाणहि
बिनु बूझे दुखु पावणिआ ।। (पृ. १२८)

पड़हि मनमुख परु बिधि नही जाना ।।
नामु न बूझहि भरमि भुलाना ।। (पृ. १०३२)

आत्मिक **'अनुभवी तत्त्व ज्ञान'** बख्शे हुए गुरमुख-प्यारों की संगत अथवा **'सत संगत'** में **सेवा-सिमरन'** करने से **'गुरू की कृपा' द्वारा** प्राप्त होता है —

किरपा करे जिसु पारब्रहमु **होवै साधू संगु** ।।
जिउ जिउ ओहु वधाईऐ तिउ तिउ हरि सिउ रंगु ।।
(पृ. ७१)

हरि सिमरत पूरन पदु पाइआ ।।
साधसंगि भै भरम मिटाइआ ।। (पृ. १९३)

J

— क्रमशः